अप्रेल १९९३ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

यो पाणमतिपातेति मुसावादञ्च भासति।
लोके अदिन्न आदयति परदारञ्च गच्छति॥
सुरामेरय पानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति।
इधेवमेसो लोकस्मिं मूलं खनति अत्तनो॥

– धम्मपद - १८ १२-१३.

जो प्राणियों की हत्या करता है, जो वाणी से झूठ बोलता है, जो परायी वस्तु चुराता है, जो परायी स्त्री के पास जाता है, जो मदिरापान करता है वह व्यक्ति यहीं इसी लोक में अपनी जड़ खोदता है।

बुद्ध और बिम्बिसार

राजकुमारी चुन्दी

महाराज बिम्बिसार की सन्तानों में से अन्य दो के नाम हमारे सामने उभर कर आये हैं। एक है राजकुमार चुन्द और दूसरी उसकी बहन राजकुमारी चुन्दी। अपने पिता के कारण ही राजकुमार चुन्द भगवान की ओर झुका होगा। उसने भगवान से सुना कि जो व्यक्ति बुद्ध धर्म और संघ के प्रति श्रद्धालु होता है और पंचशीलों का पालन करता है उसकी सद्गति निश्चित है।

राजकुमार चुन्द ने अपनी बहन राजकुमारी चुन्दी को भगवान् का यह वक्तव्य कह सुनाया। पहली बार सुनने से किसी के मन में यह भाव जाग सकता है कि यह तो साम्प्रदायिक वक्तव्य हुआ। भला बुद्ध धर्म और संघ के प्रति श्रद्धा रखने से क्यों सद्गति हो, अन्यों के प्रति रखने से क्यों नहीं हो? हम नहीं जानते कि राजकुमारी चुन्दी के मन में भी इसी प्रकार का प्रश्न कुलबुलाया था या नहीं? परन्तु इतना स्पष्ट है कि वह इस वक्तव्य का स्पष्टीकरण पाने के लिए भगवान के पास गई।

भगवान उन दिनों राजगृह में वेणुवन के कलन्दक निवापमें विहार कर रहे थे। यह वही वेणुवन है जिसे बिम्बिसार ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघ को विहार के लिए दान दिया था। यहां गिलहरियों की बहुतायत थी और उन्हें जीवनदान मिला हुआ था। अतः इस विहार का नाम कलन्दक निवापपड़ा। राजकुमारी चुन्दी भगवान से मिलने अकेली नहीं गई। वह नगर की पांच सौ हमउम्र सहेलियों को राजरथों पर सवार कर अपने साथ लेकर गई। सम्भवतः यह उन दिनों के सम्मान प्रदर्शन का एक तरीका था। बुद्ध के प्रति इस प्रकार का सम्मान प्रदर्शन हम बुद्धवाणी में अन्यत्र भी देखते हैं।

राजकुमारी चुन्दी भगवान के पास पहुँच कर, उन्हें नमन कर एक ओर बैठ गई। तब उसने भगवान से कहा –भन्ते भगवान! मैंने अपने भाई चुन्द राजकुमार से सुना है कि कोई भी नारी या नर बुद्ध की शरण, धर्म की शरण और संघ की शरण ग्रहण करता है और हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ तथा मादक पदार्थों के सेवन से विरत रहता है तो वह शरीर छूटने पर सुगति-लाभी होता है, दुर्गति-लाभी नहीं।

बुद्ध, धर्म और संघ की शरण का अर्थ होता है उनके प्रति श्रद्धालु होना। इसीलिए वह आगे पूछती है –कोई व्यक्ति शास्ता के प्रति श्रद्धालु होने से धर्म के प्रति श्रद्धालु होने से, संघ के प्रति श्रद्धालु होने से शरीर छूटने पर सुगति को ही क्यों प्राप्त होता है, दुर्गति को क्यों नहीं? शीलों का परिपूर्णरूपेन् पालन करने से शरीर छूटने पर सुगति को ही क्यों प्राप्त होता है, दुर्गति को क्यों नहीं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान ने जो स्पष्टीकरण दिया, वह सभी साधकों के लिए प्रबल प्रेरणा प्रदायक है।

उन्होंने समझाया कि तथागत सम्यक्सम्बुद्ध सभी प्राणियों में श्रेष्ठ होते हैं। सम्यक् सम्बुद्ध कोई भी हो। जो भी सम्यक् सम्बुद्ध होगा वह श्रेष्ठतम याने अग्र ही होगा। अतः जो सम्यक्सम्बुद्ध के प्रति श्रद्धालु है, वह अग्र के प्रति श्रद्धालु है। अग्र के प्रति श्रद्धालु होने का फल भी अग्र याने सर्वश्रेष्ठ ही मिलता है। वस्तुतः सम्यक् सम्बुद्ध के प्रति श्रद्धालु होने का अर्थ हुआ उनके बताये मार्ग पर चलना। उनका बताया मार्ग श्रेष्ठतम मुक्ति का मार्ग है। अतः उस पर चलते हुए श्रेष्ठतम फल प्राप्त करना स्वाभाविक है।

फिर धर्म के बारे में समझाते हुए बताया कि ऐन्द्रिय जगत की सच्चाइयों का धर्म हो या इन्द्रियातीत सच्चाई का, इन सब में वीतरागता ही सर्वश्रेष्ठ है, अतः अग्र है। वीतरागता व्यक्ति के अहंकार भरे मन का मर्दन करती है, सारी आसक्तियों का उत्खनन करती है, सारी प्यास बुझाती है, भव-चक्र का मूलोच्छेद करती है, तृष्णा का क्षय करती है, उसके प्रति विराग पैदा करती है और निरोध की अवस्था तक पहुँचाती है जिससे निर्वाण का साक्षात्कार हो जाता है। ऐसी वीतरागता के धर्म पर जिसकी श्रद्धा है उसकी सर्वश्रेष्ठ पर याने अग्र पर श्रद्धा है। अग्र के प्रति जो श्रद्धालु होता है उसे अग्र फल की ही उपलब्धि होती है।

जितने संघ या गण हैं उनमें तथागत का श्रावक संघ सबसे श्रेष्ठ याने अग्र कहलाता है। तथागत का श्रावक संघ वही है जो अरहन्त है याने जो इन चारों आर्यों में से एक भी नहीं है वह भगवान का श्रावक संघ नहीं है। आर्य है इसीलिए आह्वान करने योग्य है, आतिथ्य करने योग्य है, आदर करने योग्य है, हाथ जोड़ कर नमस्कार करने योग्य है। क्योंकि वह दानियों के लिए सर्वश्रेष्ठ पुण्य क्षेत्र है। जो ऐसे संघ के प्रति श्रद्धालु होता है वह सर्वश्रेष्ठ याने अग्र के प्रति श्रद्धालु होता है। जो अग्र के प्रति श्रद्धालु होता है उसे अग्र फल की ही उपलब्धि होती है।

जितने शील हैं उनमें आर्य शील ही अग्र कहलाते हैं याने वह शील जिनके पालन से व्यक्ति आर्य बन जाता है। ऐसे शील जो अखण्डित हैं, अछिद्र हैं, बेदाग हैं, निष्कलंक हैं, निर्मल हैं, जो

समझदारों द्वारा प्रशंसित हैं, जिनके प्रति कोई आसक्ति नहीं जागती। [किसी भी शील के प्रति आसक्ति जग जाय तो अन्य शीलों की अवहेलना होगी तथा इसके आगे समाधि और प्रज्ञा का अभ्यास छूट जायगा।] आसक्ति नहीं होती तो ये शील समाधि की परिपूर्णता में सहायक होते हैं। इस प्रकार शीलवान व्यक्ति आर्य बनता है। ऐसे आर्य बनाने वाले शीलों को जो परिपूर्ण करता है वह अग्र को परिपूर्ण करता है। जो अग्र को परिपूर्ण करता है उसे अग्र फल की ही उपलब्धि होती है।

तदनन्तर भगवान ने समझाया –

अग्गतो वे पसोंनं,

– जो अग्र के प्रति श्रद्धालु हैं,

अग्गं धम्मं विजानतं । – अग्र धर्म के जानकार हैं।

बुद्ध जैसे अग्र के प्रति श्रद्धालु होने का अर्थ अन्ध-श्रद्धा में डूब जाना नहीं है। भक्ति के भावावेश में यह आशा करने लगे कि बुद्ध मेरी दुर्गति नहीं होने देंगे, बुद्ध मुझे सद्गति देंगे, मुक्ति देंगे, ऐसी अन्ध-भक्ति में डूबा हुआ व्यक्ति बुद्ध का सही श्रद्धालु नहीं होता। बुद्ध का सही श्रद्धालु हो तो बुद्ध के द्वारा सुआख्यात धर्म के प्रति श्रद्धालु होकर उसे जाने, समझे और उसे अनुभूति पर उतारे। तभी कहा गया –

अग्गे धम्मे पसन्नानं,

– अग्र धर्म के प्रति श्रद्धालु होता है तो,

विरागूपसमे सुखे ।

–ऐसा व्यक्ति वीतरागता के प्रति श्रद्धालु होता है, विकारों के उपशमन के प्रति श्रद्धालु होता है, परम सुख निर्वाण के प्रति श्रद्धालु होता है। श्रद्धालु होगा तो ही उन्हें धारण करने के लिए प्रयत्नशील होगा।

अग्गे सङ्घे पसन्नानं ।

– अग्र आर्य संघ के प्रति श्रद्धालु होता है।

उसे जो अग्र दान देता है उससे –

अग्गं पुण्यं पवड्ढति ।

– अग्र पुण्य की संवृद्धि होती है। जिससे –

अग्गं आयु च वण्णो च यसो, कित्ति, सुखं, बलं ।

–इसी जीवन में लोकीय फल मिलता है जैसे दीर्घायु, प्रसिद्धि, यश, कीर्ति, सुख और बल।

ऐसा दानी जब –

अग्ग धम्म समाहिते,

– अग्र धर्म में समाहित होता है तो देह छूटने पर –

देवभूतो मनुस्सो वा । –देवता होता है या मनुष्य होता है। और धर्म के रास्ते चलते रह कर –

अग्गपत्तो पमोदित ।

– अग्र धर्म निर्वाण को प्राप्त कर प्रमुदित होता है।

इस प्रकार चुन्दी राजकुमारी को साम्प्रदायिकताविहीन, सार्वजनीन सनातन धर्म की शिक्षा दी गई।

कोई व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से ही बुद्ध होता है। वह किसी सम्प्रदाय से नहीं जुड़ा होता। अपनी ही पारमिताओं से, त्याग, तपस्या और संयम से जुड़ा होता है। बुद्धत्व किसी सम्प्रदाय विशेष की मोनोपोली नहीं होती। कभी कभी ऐसा भी होता है कि कोई व्यक्ति जीवन में किसी भी बुद्ध के सम्पर्क में न आये, न किसी बुद्ध का कोई उपदेश सुने, फिर भी अपनी ही समझदारी से शील, समाधि और प्रज्ञा वाले शुद्ध धर्म के रास्ते चले और बुद्ध बन जाय, शुद्ध बन जाय, मुक्त बन जाय। ऐसा व्यक्ति प्रत्येक बुद्ध याने एकाकी बुद्ध कहलाता है। अतः बुद्ध का सम्प्रदाय से कोई वास्ता नहीं होता। बुद्ध न कभी किसी सम्प्रदाय की स्थापना करता है न किसी स्थापित सम्प्रदाय से जुड़ता है न औरों को किसी स्थापित सम्प्रदाय के साथ जोड़ता है। वह स्वयं धर्म से जुड़ा होता है और लोगों को भी केवल धर्म के साथ ही जोड़ता है।

और धर्म भी वीतरागता का धर्म। राग रहेगा तो बन्दी रहेगा ही, दुःखी रहेगा ही, भले अपने आपको चाहे जिस नाम से पुकारे। राग छूट जायेगा तो बन्धन मुक्त हो ही जायेगा, दुःख मुक्त हो ही जायेगा, भले अपने आपको चाहे जिस नाम से पुकारे। वीतरागता किसी एक सम्प्रदाय की बपौती नहीं है। यह तो जो धारे उसी का धर्म है। उसी के लिए कल्याणप्रद है। इसी माने में वीतरागता का धर्म सार्वजनीन है।

संघ भी किसी सम्प्रदाय विशेष के गृहत्यागियों के समूह को नहीं कहा जाता। जो आर्य हो गये वे ही सही माने में संघ हैं। अनार्य से आर्य हो गये तो कम से कम स्त्रोतापन्न तो हो ही गये, तो ही आर्य हुए अन्यथा नहीं। स्त्रोतापन्न होता है तो मरने पर दुर्गति से बच जाता है क्योंकि उसकी अपाय गतियां निरुद्ध हो जाती हैं। ऐसा व्यक्ति किसी की कृपा से आर्य नहीं बन जाता। अपने ही पुरुषार्थ से बनता है। कोई मार्ग भले दिखा दे पर किसी को तार नहीं सकता। यदि तारक होने का दावा करे तो सम्प्रदाय बन ही जाय। न धर्म सार्वजनीन रहे, न संघ सम्प्रदाय-मुक्त रहे।

शुद्ध शील का पालन इसीलिए किया जाता है कि उसके बल पर सम्यक् समाधि पुष्ट कर ले और प्रज्ञा के आधार पर निर्वाण का साक्षात्कार कर ले तथा आर्य बन जाय। इससे सद्गति स्वतः निश्चित हो जाती है।

जब कोई व्यक्ति बुद्ध की शरण जाता है तो परम ज्ञानी की शरण जाता है, अज्ञानी की नहीं; जब धर्म की शरण जाता है तो सनातन सत्य की शरण जाता है, काल्पनिक मिथ्यात्व की नहीं; जब संघ की शरण जाता है तो विमुक्त सन्तों की शरण जाता है, भवचक्र में आबद्ध असन्तों की नहीं। जब सम्यक् समाधि, प्रज्ञा और विमुक्ति की ओर ले जाने वाले आर्य शील की शरण जाता है तो शुद्ध सदाचार की शरण जाता है, दूषित दुराचार की नहीं।

ऐसा व्यक्ति सद्गति परायण ही होता है, दुर्गति परायण नहीं।

अतः साधकों, आओ! बुद्ध, धर्म और संघ के सही अर्थ को समझते हुए श्रद्धा जगाएं और शील, समाधि, प्रज्ञा का अभ्यास कर अपना कल्याण साध लें।

कल्याण-मित्र,
स. ना. गो.